IJAER/July-August 2020 /Volume-9/Issue-4 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

रविन्द्रनाथ टैगोर जी के शैक्षिक एवं दार्शनिक चिन्तन के आयामों का संक्षिप्त मूल्यांकन

Dr. Lalit Mohan Sharma
Research Guide,
Department of Education, C.M.J University, Jorabat, Meghalaya.

Dolly
Research Scholar,
Department of Education, C.M.J University, Jorabat, Meghalaya.

सारः–

परिवर्तन प्रकृति का अटूट नियम है। प्रकृति प्रदत्त भौतिक एवं मूर्त वस्तुएं तो परिवर्तित होती ही रहती हैं साथ–साथ मानव के विचार, दृष्टिकोण, चिंतन एवं दर्शन भी परिवर्तित होते हैं। दर्शन का इतिहास इस परम् सत्य का साक्षी है कि मानवीय समस्याओं के साथ–साथ उनसे सम्बन्धित दार्शनिक विवेचन भी बदलते रहे हैं। इन परिवर्तनों ने नई परिस्थितियों से उत्पन्न चुनौतियों का सामना करने में मनुष्यों की सहायता की है। निसन्देह एक दार्शनिक के खोज का विषय सत्य का उद्घाटन है। अरविन्द के अनुसार ''एक बार पहचाने गये सत्य को हमारे आन्तरिक जीवन और बाहरी क्रियाओं में साक्षात्कार के योग्य होना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं है तो उसका बौद्धिक महत्व तो हो सकता है परन्तु सर्वांग महत्व नहीं हो सकता।'' समकालीन युग में मानववादी दर्शन ने भी मानव जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है। जान डीवी के शब्दों में– ''दर्शन संस्कृति में परिवर्तन करता है। भावी चिन्तन और कर्म के प्रतिमान निश्चित करके वह सभ्यता के इतिहास में सार्थक और परिवर्तनशील योगदान देता रहता है।

1.1 प्रस्तावना –

रविन्द्रनाथ टैगोर का जन्म सन् 1861 में कलकत्ता में हुआ था। टैगोर जी को गुरूदेव भी कहा जाता है। टैगोर बहुप्रतिभा के धनी थे। उनकी सर्वाधिक ख्याति साहित्य के क्षेत्र में हुई। सन् 1913 में 'गीताजंली' नामक पुस्तक की रचना पर उन्हें योरोपिय देशों ने किसी प्रथम भारतीय के रूप में नोबल पुरस्कार प्रदान किया। (टैगोर से पूर्व विख्यात साहित्य रचना के लिये यह पुरुस्कार 12 यूरोपियनों या अन्य पश्चिम देशों के साहित्यकारों को दिया जा चुका था)। छात्रों को प्रकृति के सानिध्य में शिक्षा प्रदान कराने के उद्देश्य से उन्होंने शान्ति निकेतन की स्थापना की। उन्होंने लगभग 2,230 गीतों, अनेक उपन्यासों, नाटकों आदि की रचना की। निबन्ध पत्र आदि के माध्यम से समाज को जागरूक कर शिक्षा प्रदान की। विश्व के अनेक देशों की यात्रा की एवं व्याख्यान दिये। अपने पिता देवेन्द्र नाथ टैगोर की 13 सन्तानों में से सबसे छोटे थे। देवेन्द्र नाथ टैगोर पूर्व से ही सम्पन्न परिवार एवं शिक्षा के धनी तथा धार्मिक व्यक्ति थे।

1.2 टैगोर के दर्शन की पृष्ठभूमिः–

टगौर के दार्शनिक चिन्तन पर उनके पारिवारिक परिवेश के अतिरिक्त जिन बातों का प्रभाव पड़ा, वे इस प्रकार हैं–

- टैगोर के दार्शनिक चिन्तन पर उपनिषदों का गहरना प्रभाव है। इनकी दार्शनिक कृतियों साधना, परसनैलिटी, क्रिएटिव यूनिटी, दा रिलीजन ऑफ मैन आदि में उपनिषद के ईश, छांदोग्य, श्वेताश्वर के मुख्यतः उद्धरण मिलते हैं। उपनिषद का प्रभाव टैगोर को विरासत में मिला था, यह इन्होंने स्वीकार किया है। वेद एवं उपनिषद को इन्होंने अक्षय विवेक का अमरकोष कहा है। इनकी जीवन, जगत के प्रति आनन्दवादी दृष्टि उपनिषद के ''आनन्दाध्येव खल्वियानि भूतानि जायन्ते'' से गुंफित हुई। यही कारण है कि इनके दर्शन में सत्य के सुंदरम् पक्ष की अद्भुत अभिव्यंजना हुई है।
- इनके दर्शन पर विशाल संस्कृत वांड्.मय का प्रभाव है। इनकी कृतियों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि टैगोर ने संस्कृत साहित्य के विशाल सागर में आकंठ निमग्न होकर स्नान किया। रामायण, महाभारत, रघुवंश, कुमार संभव, शाकुन्तलम, ऋतुसंहार, मेघदूत, उत्तरराम चरित्र, गीत गोविन्द, भामिनी विलास आदि का स्थान–स्थान पर समीक्षात्मक आलोकन–विश्लेषण किया है। महाभारत को इन्होंने देश की आत्मा कहा है।
- टैगोर के दार्शनिक चिन्तन पर वैष्णव कवियों का प्रभाव अत्यन्त स्पष्ट होता है। हमारे प्राचीन वैष्णव कवियों ने शाश्वत देव–प्रेम को गाया है, यद्यपि उन्होंने ससांरिक प्रेम की भाषा का प्रयोग किया है। टैगोर की कविताओं में हमें प्रायः वैष्णवकवियों की कविताओं का ही आभास होता है, और इनके दिव्य प्रेमगीतों में हमें जयदेव, विद्यापति एवं चंडीदास की अनुभूतियों की झाँकी मिलती है। लेकिन विद्वान इन्हें अभेदवादी– अद्वैतवादी परम्परा में रखते हैं डॉ0 दत्ता ने तो प्रतिबंधित अर्थ में ही उन्हें भक्तिवादी परम्परा में रखा है। किन्तु डॉ0 नागराज राव ने स्पष्ट शब्दों में उन्हें भेदवादी–भक्तिवादी बताया है। अभदेवाद एवं भेदवाद, अद्वैतवाद एवं भक्तिवाद की अनूठी गंगा–यमुना टैगोर के दर्शन में देखने को मिलती है। डॉ0 नरवणे का यह कथन सत्य है, कि "वस्तुतः दोनों परम्पराओं में जो सर्वोत्कृष्ट है, उसे टैगोर ने लिया।''`गोर का प्रकृतिदर्शन शंकर एवं रामानुज की अपेक्षा चैतन्य एवं श्री जीवगोस्वामी के अचिंत्य भेदाभाव के निकट लगता है। इनमें भेदवाद का उभार पाया जाता है। जिसका कोई दार्शनिक समाधान नहीं है। टैगोर ने इसे ही दृष्टि का मूल रहस्य माना है। अचिन्तय भेदाभेद का समूचा दर्शन आदि उपनिषदीय "रसो वैसः" से आप्लावित है तो टैगोर का दर्शन भी उसी भक्ति के सार्वभोम रस से संयुक्त है।
- टैगोर पर हिन्दी के सूफी कवि कबीर एवं दादू के साथ–साथ बंगाल के कुछ लोकगीतों को गाने वालों विशेषतः बाउलों का भी प्रभाव है। बाउलों के विषय में इन्होंने कहा, "जब मैं सियालदह में था तो मैं। बाउलों से निकट का सम्बन्ध रखता था, और उनसे बातचीत किया करता था, तथा यह यथार्थ है कि मैंने बाउल गीतों की ध्वनियों को अपने अनेक गीतों में मिलाया है। इनकी "क्रिएटिव यूनिटी" में बाउलों

का अत्यंत समधुर काव्य–बिम्ब मन को विभोर कर देता है।

- इनके दार्शनिक चिन्तन पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। बौद्ध दर्शन के प्रति इनकी आस्था सुदुर पूर्वी देशों के पर्यटन के बाद बौद्ध कथानकों पर इनके बहुत से निबन्ध एवं गीत आधारित हैं। टैगोर के अनुसार बौद्ध धर्म ने जगत को एक नया आलोक दिया। उन लोगों ने इस बात की अनुभूति की प्रत्येक व्यक्ति में बुद्ध होने की क्षमता है यानि अनंत मूर्तिमान हो सकती है। इन्होंने कहा कि बौद्ध काल के आते ही हमारे देश की गानवता अपनी अत्यधिक गहराई तक स्पांदित हुई। पूरे एशिय महाद्वीप में मस्तिष्क कीजो स्वतन्त्रता इसने उत्पन्न की, वह सर्जनात्मक वैभव के रूप में भरपूर ढंग से छा गयी।
- तत्कालीन देशीय एवं अन्तर्देशीय बौद्धिक क्रांति ने भी टैगोर को प्रभावित किया। धर्म के क्षेत्र में राजा राम मोहन राय ने, साहित्य के क्षेत्र में बंकिमचन्द्र चटर्जी ने, समाज व राजनीतिक क्षेत्र में उस समय के बदलते हुए मूल्यों ने। गेटे के बाद टैगोर ने ही इतनी गहराई से इतने अधिक स्त्रोतों का पान किया अथवा इतने विभिन्न विचारों को विलष्ट दार्शनिक अनुशासन के अन्तर्गत लाया।

1.3 टैगोर का दार्शनिक चिन्तनः–

टैगोर कवि दार्शनिक हैं। इनका दर्शन क्लिष्ट तार्किक पद्वति पर आधारित न होकर एक मनीषी दृष्टा की अनुभूति पर आधारित है । ये अपने को दार्शनिक कहने में संकोच का अनुभव करते हैं। कुछ लोगों का मत है कि टैगोर का कोई अपना दर्शन नहीं है। इसलिए इन्हें दार्शनिकों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। इनके अनुसार टैगोर केवल कवि तथा कलाकार हैं, दार्शनिक नहीं। किन्तु हम उनके विचार से सहमत नहीं है। यदि दर्शन, जीवन जगत के प्रति एक दृष्टि है तो निःसन्देह ये एक दृष्टा है, दर्शनिक हैं। विभिन्न दार्शनिक तत्वों के विषय में इनके निश्चित विचार हैं और इन विचारों को इन्होंने अत्यन्त स्पष्ट में रखा है। ये उन कुछ दार्शनिकों में से एक हैं जो महान थे और उन कवियों में से एक हैं जिन्होंने अपने दर्शन को स्वयंमेव आकृति दी है।

टैगोर का दर्शन आस्तिकावादी दर्शन है। इनके दार्शनिक विचार इस प्रकार हैंः–

(क) **जगत एवं प्रकृति :–** टैगोर का विचार है कि मनुष्य सत्य के निकट है किन्तु फि भी उस सत्य का ज्ञान नहीं हो पाता जिसका कारण ये माया को मानते हैंजिसके सत्य व असत्य दो रूप है। एक रूप में माया का अस्तित्व है तथा दूसरे रूप में नहीं। माया का प्रचार इस सम्पूर्ण जगत में है। इस प्रकार जगत वास्तविक है तथा आत्मविकास का एक साधन है। विश्व में जो भिन्न–भिन्न प्रकार के रूप दिखलाई देते हैं, वे प्रकृति हैं तथा प्रकृति के समस्त रहस्यों का ज्ञान होना मानव का धर्म है। इस प्रकृति में जीव व जड़ सभी जगत के अंग हैं, जिन्हें जानना सभी के लिए आवश्यकता है। जीव एवं जगत एक दूसरे के पूरक है, ये एक–दूसरे के बिना अधूरे हैं। जगत की उपयोगिता जीव के लिए है। जीव के अभाव में जीव की अभिव्यक्ति असम्भव है। टैगोर के अनुसार पृथ्वी और आकाश मनुष्य के मस्तिष्क के रेशे से बुने हुए हैं।

अर्थात् जगत को जीव की मूल्य प्रदान करता है।

निःसन्देह जगत तथा प्रकृति के प्रति पश्चात्य धारण विरोध की है। अतः पश्विचम में प्रकृति पर विजय पर विजय प्राप्त करने में सर्वदा आनन्द की अनुभूति की है, मानों हम ऐसे संसार में रह रहे हैं जिसकी सभी चीजें, सारी व्यवस्था हामरे प्रतिकूल है। इस प्रकार की धारणा का कारण टैगोर ने नगर की चहारदीवारी मे रहने की प्रवृत्ति एवं मन के प्रशिक्षित होने को बताया है।[26] इसी सन्दर्भ में इन्होंने कालीदास एवं शेक्सपीयर की तुलना की है एव उनकी प्रकृति सम्बन्धी धारणा का बड़ा ही विशद् चित्राण किया है।

(ख) **सत्य ज्ञानः–** टैगोर ने हा हे कि संसार का सत्य उसके अनेक जड़ पदार्थों में नहीं है। अपितु उसके माध्यम से अभिव्यक्त होने वाली एकता में निहित है। हमारा वस्तुओं के विषय में ज्ञान उन्हें विश्व के सम्बन्ध में जानना है, उसके सम्बन्ध में जोकि परम सत्य है। टैगोर के अनुसार संसार का साधारण ज्ञान केवल तथ्यात्मक है तथा परम तत्व ही वास्तविक सत्य है। इनके अनुसार तथ्य से सत्य का प्रकाश वास्तव में प्रकाश है। टैगोर मानते हैं कि सत्य ज्ञान को प्राप्त करने हेतु प्रेम की अति आवश्यकता है किन्तु वह कृतिम न होकर स्वाभिक होना चाहिये। ये लिखते हैं कि "हमारी तर्कशक्ति, सच्ची मानवीय एकता के सत्य को क्या नाम दे सकती है। इस तथ्य को अनदेखा नहीं किया जा सकता कि जब हम स्वयं को दूसरों में अनुभव करते हैं तब हम अपपने सर्वोच्च स्वरूप को प्राप्त करते हैं और यही प्रेम की परिभाषा है। यह प्रेम, हमको पूर्ण तथा अन्तिम सत्य प्रदान करता है। प्रेम किसी प्रकार का जाति–भेद या रंग–भेद नहीं जनता। प्रेम की भावना विभिन्नता के अनावश्यक के बन्धनों से स्वतन्त्रता प्रदान करती है, तथा हमारी चेतना को आन्तरिक शक्ति देती है, यही नागरिकता की उच्च भावना है।

(ग) **ईश्वर या ब्रह्म :** टैगोर ने ईश्वर के अस्तित्व को माना है और कहा है कि ईश्वर का तर्क द्वारा नहीं अपितु प्रेम के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। ये कहते हैं कि हमें ईश्वर को उसी प्रकार अनुभव करना चाहिये जिस प्रकार हम प्रकाश का अनुभव करते हैं। ये ईश्वर को "सर्वोच्च मानव" के रूप में मानते हैं। यद्यपि टैगोर अद्वैतवादी हैं किन्तु ब्रह्म समाज से प्रभावित होने के कारण ये "सर्वेश्वरवादी ब्रह्मवादी को स्वीकार करते हैं। इनका विचार है कि मानवता की सेवा से ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है, क्योंकि ईश्वर का ही रूप मानव है। मानव प्रेम ही ईश्वर प्राप्ति की एक मात्रा पूंजी है। टैगोर कुछ सीमा तक सौन्दर्यात्म समेवित ब्रह्ममवादी भी है। ये कभी–कभी ईश्वर को मानव शरीर पर निराकर ही मानते हैं। इन्होंने सत्यं, शिव, एवं सुन्दरम् तीनों को ईश्वर के गुण बतायें है जिनके साक्षात्कार करने से मनुष्य को सच्चे आनन्द की अनुभूति होती है।

(घ) आत्मा व जीव : टैगोर ने गीतांजली में ईश्वर तथा मनुष्य को दा सत्यों के रूप में माना है। ये व्यक्ति की आत्मा को ब्रह्म से प्रथक मानते हैं। इनके शब्दों में, "आत्मा को पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिय। एक स्वान्त्र वस्तु ही दूसरी स्वतन्त्र वस्तु से समन्वय रख सकती है। ईश्वर ने हमें यह स्वतन्त्रता तथा समझदारी दी है। उसने हमें यह बताया है कि मेरे पास स्वतन्त्र बनकर आओ, कोई वस्तु जो परतन्त्र हैं, मेरे पास नहीं आ सकती है।" इससे स्पष्ट होता है कि टैगोर आत्मा को स्वतन्त्र मानते हैं तथा यथार्थ की अनुभूति भी

तभी सम्भव मानते हैं, जब आत्मा स्वतन्त्र हो। यह स्वतन्त्र आत्मा यह प्रयास करती है कि वह महान स्वतन्त्र आत्मा आर्थत् ईश्वर में लीन हो जाय। टैगोर का विचार है कि मनुष्य की आत्मा का लक्ष्य ब्रह्म में लन होना मात्रा नहीं है, अपितु स्वयं को पूर्ण बनाना है। ईश्वर, पूर्णता का अनन्त आदर्श है, मनुष्य की जानन्द प्राप्त करने की शाश्वत प्रक्रिया है। ये आत्मा के तीन रूपों में विश्वास करते हैं। प्रथम रूप, रक्षा भावना का, द्वितीय अपने

(ड़) **प्रेम व भक्तिः–**

टैगोर के अनुसार जीवन का सिद्धान्त अनेकता में एकता है न कि अनेकतावहीन एकता। इनके अनुसार, जब तक बीज रहता है वह एक रहता हैं। यह उसकी संघर्षविहीन शान्तावस्था है। किन्तु ज्योहि अंकुरण होता है, अनेकता फूट पड़ती है। जीवन प्रारम्भ हो जाता हैं यहा पर टैगोर के दर्शन पर हेगेल तथा रामानुज का प्रभाव दिखाई देता है। अद्वैत यदि मात्रा अद्वैत है तो शून्य है, यह विशीष्टाद्वैत है। तार्किक दृष्टि से हेमेल व रामानुज के दर्शन में अन्तर्विरोध है, क्योंकि ये एक एवं अनेक दोनों को सत्य मानते हैं, किन्तु टैगोर का कहना है कि "इस अन्तर्विरोध के बावजूद यथार्थ भी तो यही है। अनन्त असीमित का प्रकाशन शान्त असीम में हुआ हैः निःसन्देह यह एक रहस्य है, किन्तु सृष्टि के मूल में भी तो यही रहस्य है। टैगोर कहते हैं कि रहस्य का समाधान तार्किकता से परे व्यक्तिगत आनन्दनुभूति द्वारा किया जा सकता है। ये आनन्द के स्थान प प्रेम की भावना द्वारा भी इस रहस्य की व्याख्या करते हैं। इन्होंने प्रेम के द्वारा ही ब्रह्म के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों का समन्वय किया है।

(च)**धर्मः–** टैगोर ने कहा कि मेरा धर्म मानव का धर्म है। जिसमें आनन्द की परिभाषा मानवता है। इस प्रकार ये धर्म को व्यापक रूप में लेते हैं। इनके अनुसार धर्म मात्रा नेताओं के संदेशों मे ंनहीं अपितु वह तो कला एवं प्रकृति से प्राप्त आनन्द में है। संस्कृति, समाज की प्राप्ति में हैं, विभिन्न देशों के प्रति सद्भावना में हैं, समाज के निर्धन, निरक्षर एवं निम्न लोगों की सेवा में है, शान्ति, स्थिरता एवं उच्च आदर्शों एवं मूल्यों की स्थापना एवं उनके पालन में है, तथा अन्तिम आध्यात्मिक सत्य की खोज प्राप्ति एवं प्रसार में है।

(छ) **मानवः–** टैगोर मानव मे ंआस्था रखते हैं, इसलिए इन्हें उच्च कोटि का मानवतावादी कहा जा सकता है। एक महाकवि होने के नाते इन्होंने संवेगों एवं स्थायी भावों के दमन का परामर्श नहीं दिया वरन् व्यक्ति की सभी शक्तियों के सामांजस्यपूर्ण विकास का समर्थन किया। ये व्यक्ति के सम्मान एवं उसकी स्वतन्त्रता में आस्था रखते हैं। ये धर्म, भाषा तथा लिंग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं मानते। इनके अनुसार सहयोग से व्यक्ति एवं राष्ट्र की निर्धनता समाप्त हो सकती है। टैगोर ने मानव को "सर्वोच्च स्थान" दिया है। इन्होंने मानव में ईश्वर के रूप को देखा है और इस प्रकार मानव को यथार्थता प्रदान की है, तथा साथ ही ईश्वर में भी मानवीय गुणों को देखने को प्रयत्न किया है। इन्होंने मनुष्यत्व में ईश्वरत्व को ही नहीं देखा अपितु व्यवहार में भी प्रकट किया है। इन्होंने कहा कि ईश्वर ने जिन भी वस्तुओं का सृजन किया है, वह सभी में व्याप्त है, किन्तु मानव इनकी सम्पूर्ण सृष्टि में सबसे महत्वपूर्ण है। मानव अपूर्व है क्योकि उसमें ईश्वर विशेष रूप से व्याप्त है। इस दृष्टिकोण के आधार पर टैगोर ने कहा कि अनन्त का ज्ञान और शक्ति आकाश के तारों की अपेक्षा मानव की आत्मा में अधिक मिलती है। मानव ईश्वर के सितार का स्वर्णतार है।

1.4 रविन्द्रनाथ टैगोर जी शिक्षा के प्रकार और माध्यम :–

रविन्द्रनाथ टैगोर जी ने शिक्षा के अन्य पक्षों पर भी अपने विचार व्यक्त किए हैं। यहाँ इनके जन शिक्षा, स्त्री शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, धर्म शिक्षा और राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय शिक्षा सम्बन्धी विचार प्रस्तुत हैं।

जन शिक्षा – गुरूदेव ने तत्कालीन भारत की दीन–हीन दशा देखी थी और साथ ही पाश्चात्य देशों का वैभवशाली जीवन देखा था। इन्होंने यह भी अनुभव किया कि हमारे इस पिछड़ेपन का मूल कारण शिक्षा का अभाव है। अतः इन्होंने जन शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया। जन शिक्षा को गुरूदेव ने थोड़े व्यापक रूप में लिया है। प्रथमतः तो गाँव और शहर के सभी बच्चों के लिए समान, सामान्य, अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाए और दूसरे अशिक्षित प्रौढ़ों को पढ़ने–लिखने का ज्ञान कराया जाए। गुरूदेव ने स्पष्ट किया कि हमारे देश की 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँवो मे निवास करती है इसलिए शिक्षा में ग्रम्य जीवन की समस्याओं को विशेष स्थान दिया जाए। गुरूदेव के अनुसार भारत का उत्थान ग्रमोद्वार द्वारा ही सम्भव है। प्रौढ़ शिक्षा के लिए गुरूदेव ने रात्रि पाठशालायें खोलने पर बल दिया और कहा कि प्राथमिक पाठशालाओं के शिक्षकों और माध्यमिक पाठशालाओं के शिक्षार्थियों को इन पाठशालाओं में प्रौढ़ों को पढ़ाने का कार्य करना चाहिए।

स्त्री शिक्षा – गुरूदेव ने स्त्री शिक्षा के महत्व को स्पष्ट किया और उनकी शिक्षा की पूरी रूपरेखा तैयार की। गुरूदेव के अनुसार प्राथमिक शिक्षा लड़के–लड़कियों सबके लिए समान होनी चाहिए। माध्यमिक स्तर पर लड़कियों के लिए गृह विज्ञान अनिवार्य होना चाहिए क्योंकि उन्हें पत्नी और माताओं की भूमिका अदा करनी होती है और उच्च शिक्षा लड़के–लड़कियों के लिए समान होनी चाहिए। गुरूदेव ने इस बात पर बहुत बल दिया कि लड़के–लड़कियों,दोनो को किसी भी प्रकार की शिक्षा के समान अवसर और समान सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए। इन्होंने स्पष्ट किया कि जब तक देश के सभी स्त्री–पुरूष शिक्षित नहीं होते और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कंधे से कंधा मिलाकर नहीं चलते तब तक देश का उत्थान नहीं किया जा सकता। यूँ, गुरूदेव सहशिक्षा के पक्ष में नहीं थे परन्तु जहाँ लड़कियों के लिए अलग से विद्यालय न हो,वहाँ सहशिक्षा के लिए अनुमति देते थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि ये स्त्री शिक्षा के प्रति अति सचेष्ट थे।

व्यावसायिक शिक्षा– गुरूदेव ने स्पष्ट किया कि देश के आर्थिक विकास के लिए व्यावसायिक शिक्षा अति आवश्यक है, और चूँकि हमारा देश कृषि प्रधान देंश है और कुटीर उद्योग प्रधान देश है इसलिए यहाँ कृषि एवं कुटीर उद्योगों की शिक्षा की विशेष व्यवस्था होनी चाहिए। आधुनिक विज्ञान और तकनीकी से भी ये वंचित नहीं रहना चाहते थे और भारी उद्योगों के लिए इस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था आवश्यक समझते थे।

धर्म शिक्षा– धर्म के सम्बन्ध में गुरूदेव का दृष्टिकोण बहुत विस्तृत था। इनके अपने शब्दों मे–धर्म असीम के प्रति एक तीव्र इच्छा है उसकी आनन्दमयी अनुभूति है। वे अन्धविश्वासों, पूजा–पाठ की आडम्बरयुक्त विधियों और कर्म काण्ड के विरोधी थे। इन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि सच्ची धार्मिकता जप–तप मे नही; मनुष्य को मनुष्य मानने मे है, मानवमात्र की सेवा करने में है, विश्वकल्याण की भावना में है, विश्वभर में एकात्म भाव की अनुभूति करने में है। गुरूदेव ने स्पष्ट किया कि इस धर्म की शिक्षा उपदेश, व्याख्यान अथवा पुस्तकों के माध्यम से ले। उन्होंने विद्यालयों का प्रारम्भ प्रातःकालीन प्रार्थना से करने,सभी धर्मो के प्रवर्तकों के जन्मदिन मनाने और उनके उपदेशों से बच्चों का परिचित कराने, प्रकृति, कला और संगीत के सौन्दर्य में ईश्वरीय तत्व की अनुभूति कराने, दीनं–हीनों की सेवा करने, निर्बलों को ऊँचा उठाने और समाज राष्ट्र और विश्व हित के कार्यो को करने पर बल दिया। गुरूदेव का विश्वास था कि मानवमात्र की सेवा द्वारा ही एकात्म भाव की अनुभूति की जा समती है और इसी को वे सच्चा धर्म मानते थे।

राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय शिक्षा– यूँ गुरूदेव ने राष्ट्रीय अथवा अन्तराष्ट्रीय शिक्षा की कोई योजना प्रस्तुत नहीं की है परन्तु इनके तत्सम्बधी विचारों से यह बात स्पष्ट होती है कि ये देशवासियों को सर्वप्रथम अपनी भाषा, अपने साहित्य और अपने धर्म एवं दर्शन से परिचित कराना चाहते थें। परन्तु वे संकीर्ण राष्ट्रीयता के पक्षधर नही थे; वे तो अन्तर्राष्ट्रीयता के हामी थें। इन्होंने अपनी भाषा, साहित्य और धर्म–दर्शन के साथ–साथ विश्व की अन्य भाषाओं, साहित्यों, धर्मों और दर्शनों के अध्ययन पर भी बल दिया है।

1.5 निष्कर्ष :–

टैगोर ने बालक की स्वतंत्रता तथा प्राकृतिक शिक्षा पर बल अवश्य दिया, पर समाज सुधारक होने के नाते उन्होंने शिक्षा को समाज की जीवनदायी धारा माना तथा समाज सेवा का साधन माना। टैगोर विश्वबन्धुत्व में विश्वास करते थे, अतः समाज से उनका तात्पर्य संकुचित न होकर विश्व समाज था। वे कहते थे कि शिक्षा को जीवन के अनुसार होना चाहिये। यदि शिक्षा वास्तविक जीवन से अलग हो जायेगी तो इससे समाज का कभी भला नहीं होगा। इस दृष्टि से शिक्षा को प्रकृति तथा मनुष्य से निरन्तर सम्बन्धित होना चाहिए तथा उसकी व्यवस्था इन दोनों की संगत में होनी चाहिए। टैगोर ने स्वयं लिखा है– प्रकृति के पश्चात बालक को सामाजिक व्यवहार की धारा के सम्पर्क में लाना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

- बनर्जी, हीराण्यमय (2001) "बिल्डर्स ऑफ मौडर्न इण्यिा, रवीन्द्रनाथ टैगोर" पब्लिकेशन डिवीजन : मिनिस्टरी ऑफ इनफोरमेशन एण्ड ब्रोडकास्टिंग" 2005
- कालेलकर, काकासाहब (2001) "युगमूर्ति रवीन्द्रनाथ टैगोर "कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर,।
- मित्तल, एम.एल. (2006), उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ।
- भाटिया, के.के. नारंग, सी.एल. (1984), शिक्षा के सिद्धांत तथा विधियां, प्रकाश ब्रदर्स, लुधियाना।
- पाण्डेय, रामशक्ल (2007), उभरते हुये भारतीय समाज में शिक्षा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

- पाठक, पी.डी. (1977), भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
- राधाकृष्ण (2007) : "दा फिलासफी ऑफ आर. एन. टैगोर" मैकमिलन एण्ड कम्पनी इण्डिया लि0, 2005
- शर्मा, आर.ए. (2006), शिक्षा अनुसंधान, आर.लाल बुक डिपो, मेरठ।
- सक्सेना, सरोज (2007), शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
- सरकार, भूपेन्द्रनाथ (2011): "टैगोर दा एजूकेटर" एकेडमिक पब्लिशर्स, 5 ए, भवानी दत्तलेन, कलकत्ता।
- सूद, विजय (1991), आधुनिक भारतीय समाज में शिक्षा, भारत बुक सैन्टर : लुधियाना।
- वर्मा, वैधनाथ प्रसाद (2005): " विश्व के महान शिक्षा शास्त्री, "विहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पटना।
- वालिया, जे.एस. (2007), शिक्षा के सिद्धांत तथा विधियां, पाल पब्लिशर्स, जालन्धर।